et kfy l av k$ p fj =&fu ekZk

सफ़वतुल उलमा मौलाना सैय्यद क़ल्बे आबिद साहिब क़िब्ला ताबा सराह

अनुवादक – मु0 र0 आबिद साहिब

जगदीश अल्लाह ने मनुष्य की हिदायत (मार्ग–दर्शन) के लिए नबियों और रसूलों (ईश–सन्देशवाहक एवं ईश दूतों) का क्रम स्थापित किया, किताबें उतारी, शरीयतें (धर्मनिधियाँ) भेजीं जिनमें सबसे आखिर और सम्पूर्णतम शरीयत वह है जिसको सबसे आखिरी नबी हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) के द्वारा भेजा गया। काल और समय के अनुसार शरीयतें बदलती गयीं, दीन (धर्म) एक ही रहा जैसा कि (अल्लाह का) इरशाद (सूक्ति) है – "इन्नद्दी–न इन्दल्लाहिल् इस्लाम" (अल्लाह के नज़दीक दीन बस इस्लाम ही है) जनाब इब्राहीम (अ0) और जनाब याकूब (अ0) के सम्बन्ध में यह व्याख्या है कि आपने अपनी औलादों से यह वसीयत की कि तुम्हें इस्लाम पर मौत आए। तो पता चला कि रिसालत मॉब (हज़रत मुहम्मद स0) से पहले भी जिस धर्म का प्रचार किया जाता रहा है वह इस्लाम ही था। शरीयतों के बदलने का मतलब यह है कि समय के आवश्यक्तानुसार अमोंलिक आदेशों में परिवर्तन होते रहे। खुद शरियतों का बदलना इस बात का प्रमाण है कि जगदीश (खुदा) के आदेशों में ध्येय और उद्देश सापेक्ष होते हैं यदि ध्येय और उद्देशों के समक्ष शरीयत के आदेश न हों तो समय बदलने से हालात के बदलाव से शरीयत में परिवर्तन के कोई माने नहीं होते। खुद शरियतों का बदलना इस दृष्टिकोण को नकारता है जिसमें यह कहा जाता है कि खुदा के आदेश ध्येय और उद्देश्यों के सापेक्ष नही होते। वास्तव में कोई अच्छाई और कोई बुराई नही है जिसका लिहाज़ करके अल्लाह ने किसी बात का हुक्म दिया या मना किया हो बल्कि वही अच्छा है जो अल्लाह कह दे और वह बुरा है जिसकी अल्लाह मनाही कर दे। अगर वह झूठ को वाजिब (अनिवार्य) कर देता तो झूठ अच्छा होता अगर सच को मना कर देता तो सच बुरा होता। अर्थात अच्छाई और बुराई का आधार अल्लाह का हुक्म और उसकी मनाही है। इससे हटकर वस्तुतः न कोई चीज़ अच्छी है और न कोई चीज़ बुरी है लेकिन यदि यह दृष्टिकोण सही हो तो फिर खुद आदेशों का परिवर्तन का आधार क्या निश्चित होता है? परिस्थितियों और परिघटनाओं के बदलने से आदेशों में क्यों परिवर्तन किया गया। क़ुर्आन मजीद भी व्याख्या कर रहा है कि खुदा के आदेश निरूद्देश नहीं होते जैसा कि रोज़े के बारे में इरशाद है कि रोज़ा इसलिए फ़र्ज़ (धर्मबद्ध) किया गया "ल–अल्ल–कुम तत्तकून" (कि तुम में तक़वा अर्थात भगवान का भय पैदा हो जाए।) नमाज़ के लिए इरशाद है कि "इन्नस्सला–त तन्हा अनिल् फह्शा–इ–वल्मुन्कर" (नमाज़ हर प्रकार की खुली और छुपी बुराईयों से रोकती है) जमाअत की नमाज़ (सामूहिक नमाज़) का उद्देश एवं ध्येय यह बताया गया कि मुसलमानों में सामूहिकता (समाजिकता) पैदा हो। हज्ज का कारण यह बयान किया जाता है कि पूरा मुसलमान जगत एक केन्द्र पर एकत्रित हो। अहलेबैत में इमामों से भी बहुतात से ऐसी रिवायतें (वर्णित कथन) मिलती

हैं जिनमें शरियत के आदेशों (धर्मा–देश) के ध्येय व उद्देश को बयान किया गया है। निश्चय ही अल्लाह के आदेशों का पालन करने से आख़िरत का अज्र व सवाब (पुण्य) प्राप्त होगा लेकिन यह सवाब इताअत (आज्ञा–कारिता) का है। क्योंकि मोमिन (आस्तिक) बन्दे ने अल्लाह के आदेशों का पालन किया उसका सवाब आख़िरत (परलोक) में देगा जो विभिन्न इबादतों को लिए अलग–अलग निश्चित है लेकिन कुदरत (प्रभुत्व) की दृष्टि में इन आदेशों का उद्देश परलौकिक पुण्य नही वरन् उसने जो आदेश दिये हैं वह इंसान के भौतिक जीवन के लोभ हितों और भलाइयों का लिहाज़ (पास) रखते हुए दिये गए हैं।

अतः यदि यह कहा जाए कि कर्बला की घटनाओं और मजलिसों (शोक–सभाओं) से सबक़ लेकर इन्सान को अपनी ज़िन्दगी संवारना चाहिए, अपने आचरज–चरित्र ठीक करना चाहिए, कर्बला के अमर शहीदों के चरित्र को अपनाने की कोशिश करना चाहिए तो कोई नयी बात और नया विचार नहीं समझना चाहिए। अहलेबैत (अ0) की परम्पराएँ मौजूद हैं ''मन जलिस मजलिसन युहया फीही ज़िक्रुन लम युमित क़ल्बिही यौम तमूत फीहील् कुलूब'' (जो वयक्ति किसी ऐसी मजलिस, सभा में बैठे जिसमें हमारा तज़किरा हो तो उसका दिल उस दिन यानि क़यामत के दिन मुर्दा न होगा जब सब दिल मुर्दा होंगें)

जिन हदीसों (मासूमों से उद्धघृत सूक्तियों) में रोने के गुण बखान किए गए हैं उनको नकारा नहीं जा सकता है लेकिन सवाल यह है कि वह सभी पुण्य इमाम के आदेश पालन के परिणाम में मिलेंगे। मासूम (अ0) ने कर्बला की घटनाओं और इमाम हुसैन (अ0) की मुसीबतों के संस्मरण का हुक्म ही क्यों दिया है। जैसा कि पहले बयान किया जा चुका है कि शरियत के आदेश का उद्देश्य परलौकिक पुण्य नही हो सकता (क्योंकि यह आज्ञाकारिता का परिणामस्वरूप है) अब वह उद्देश क्या है जिसको दृष्टगोचर रखने के लिए यह आदेश दिये गए हैं?

ज़ाहिर है कि इसके अलावा क्या हो सकता है कि जब कर्बला की घटनाएँ हमारे सामने आती हैं तो उनसे हमें ऐसे सबक़ मिलते हैं जिनसे हम अपना जीवन संवार सकते हैं, अपने आचरण–चरित्र को उस सांचे में ढाल सकते हैं जो एक सच्चे मोमिन और मुसलमान का होना चाहिए। कभी–कभी यह कह दिया जाता है कि अहलेबैत (अ0) तो मासूम (अदग) थे, इमाम हुसैन (अ0) तो इमाम थे, हम मासूम या इमाम तो नही, उनका आचरण (अनुसरण) क्योंकर कर सकते हैं। किन्तु कुर्आन मजीद की व्याख्या है कि खुदा किसी के ऊपर उतना बोझ नहीं डालता जो उसके सहन से परे हो। यदि मासूम का अनुसरण ग़ैर मासूम (जो मासूम न हो) के लिए सम्भव न होता तो अल्लाह कभी सभी मुसलमानों को रसूल (स0) का अनुसरण करने का आदेश न देता फिर कर्बला के आइने में मासूम के चरित्र के अलावा ग़ैर मासूम व्यक्तियों के जीवन हमारे लिए मार्गदीप (मार्ग–दर्शक) बन कर आते हैं।

क्या किसी ने जनाब हबीब इब्ने (सुपुत्र) मज़ाहिर, जनाब मुस्लिम बिन (सुपुत्र) औसजा और ज़ुहैर बिन क़ैन आदि के सम्बन्ध में इसमत (अदगता–निष्पापिता) का दावा किया है? इमाम हुसैन (अ0) के साथ आने वालों में सिर्फ हाशिमी व मुत्तलिबी (इमाम हुसैन अ0 के वंशज) ही नहीं सिर्फ कुरैश (रसूल स0 और स्वयं इमाम के गोत्र वाले) ही नहीं केवल अरब ही नहीं वरन् रोम व हबश (इथोपिया) के रहने वाले भी सम्मिलित थे।

लगभग हर आयु के जवान, बूढ़े और बच्चे मौजूद थे। मर्द भी थे औरतें भी थीं लेकिन उनमें से जिसको देखिये वह आचरज का एक अलौकिक और निरूपम आदर्श (Ideal/Model) बनाने के योग्य है। क्या उच्च और महत्व उद्देश के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी (बलि) पेश करने की मिसाल कर्बला की घटना से बढ़कर मिलती है? क्या अल्लाह की इबादत (उपासना) को किसी भी दशा में न छोड़ने का नमूना यहाँ ये ज़ियादा अच्छा मिल सकता है? क्या आपस में भाईचारे, हमदर्दी (सौहार्द) और समता की भावना इस से अधिक परिपूर्ण ढूँढी जा सकती है? क्या सच्चाई पर जम जाने और सत्यता से बाल की नोक भर न हटने की मिसाल यहाँसे अच्छी कहीं पायी जा सकती है? क्या परहित, कुर्बानी के कर्बला से अच्छे नमूने कहीं मिलेंगे? क्या बड़ी से बड़ी मुसीबत के सहन और धैर्य व दृढ़ता में अन्तर न आने की कर्बला से बढ़कर कोई घटना प्रस्तुत की जा सकती है? क्या इमाम की आज्ञाकारिता और आदेश पालन को हर चीज़ पर वरियता देने की मिसाल यहाँसे बढ़कर कहीं मिल सकती है? बस कर्बला की एक तस्वीर (चित्र) है मगर हज़ारों रंग स्पष्ट हैं।

कर्बला एक फूल नहीं, एक गुलदस्ता (पुष्पान्जली) है, गुलदस्ता नहीं, एक चमन (वाटिका) जिसमें आचरण व चरित्र के रंगारंग फूलों के विभिन्न गुच्छे खिले हुए है और हर एक अपने रंग–सुगंध में बेजोड़ और बेमिसाल है। यह धारणा पूर्णतयः ग़लत है कि इमाम हुसैन (अ0) हमारे लिए नजात (मोक्ष) का वसीला (साधन) जैसे ईसाई जनाब ईसा (ईशु मसीह अ0) के सम्बन्ध में फिद्या (बदले की कुर्बानी) की धारणा रखते हैं यानि हम इमाम हुसैन (अ0) के प्रेम के दावे के बाद पूर्णतयः आज़ाद (निरंकुश) कर दिये गए हैं जो चाहें दुर्व्यवहार करे, दूसरों पर अत्याचार करें उसके अधिकार हड़प लें, इस्लामी आदेशों को पैरों से रौंदे लेकिन जन्नत का ठेका हमारे नाम लिख दिया गया हैं। निश्चय ही इमाम हुसैन (अ0) मोक्ष के माध्यम है, निश्चय ही इमाम हुसैन (अ0) उन्मुक्ति के साधन हैं, मगर किस तरह? उसी तरह जिस तरह हुर को जहन्नम से छुटकारा देकर जन्नत का पात्र बना दिया। अर्थात प्रेम का ज़बानी दावा न करो वरन् कर्म और आचरण से भी हुसैनीय बनने की कोशिश करो। इस समय हमारी सबसे बड़ी ख़राबी यह है कि हमने मजलिसों को सिर्फ़ रस्मी (परम्परागत) बना लिया है। हमारे बाप–दादा मजलिसें करते थे अतः हमें मजलिस करना है। जो हिस्सा दस बीस बरस पहले बटता था वही बटना है। अगर हिस्से में कमी आ गयी तो दुनिया को क्या मुँह दिखायेंगे? दोस्तो में नाक कट जायेगी। तो अब मजलिस क्या हुई? दोस्तों में नाक बचाने का माध्यम और मुँह दिखाने का साधन रह गयी है। सुबह से शाम तक एक के बाद एक मजलिस में शिरकत होती है, (सम्मिलित होते हैं) लेकिन न यह उद्देश लेकर जाते हैं कि कुछ पाना है और न कुछ शिक्षा लेकर उठते हैं। लेकिन वही लोग जो मातम करके निकल रहे हैं, जिन्होंने अपनी ज़बानों से अभी थोड़ी देर पहले इमाम हुसैन (अ0) और कर्बला के अमर शहीदों के पाक और पुण्य नाम लिये थे जब उनकी गलियों और कूचों में बातें सुनी जाती हैं तो शर्म और लज्जा से सर झुक जाता है। हमारी क़ौम (सम्प्रदाय) आचरण की दृष्टि से दिन प्रतिदिन गिरती चली जा रही है हालाँकि हुसैन (अ0) का ज़िक्र (स्मरण) सुनने में कोई कमी नही हुई है। मेरे विचार में सभी रोगों का एकमात्र निदान यह है कि ज़ाकिर हज़रात (प्रवचकगण) मजलिसों को

अहलेबैत (अ0) के चरित्र–आचरण की पाठशालाएँ बना दें और मजलिस में शरीक होने वाले भी सिर्फ सुनने, वाह–वाह, सुब्हानल्लाह के नारे लगाने और दूसरे कान से उड़ा देने के मन से नही, बल्कि हर मजलिस से कुछ न कुछ प्राप्त करके उठें। निश्चित ही हुसैन (अ0) की शहादत ने हमें संचार–प्रचार का एक उत्तम माध्यम दिया है जो किसी सम्प्रदाय को प्राप्त नहीं और वह हमारी मजलिसें हैं। बस आवश्यक्ता इतनी है कि इस माध्यम और साधन का सही उपयोग किया जाये। तलवार जितनी धार वाली और तेज़ होगी ग़लत उपयोगसे बुरे परिणाम निकलने की उतनी ही सम्भावना होगी। अब इस संचार माध्यम को भी ग़लत हाथों में जाने से बचाना चाहिए नहीं तो लाभप्रद परिणामों के बदले बुरे परिणाम प्राप्त होते चले जायेंगे।

'kcsvk'kjw

अल्लामा नज्म आफ़न्दी

चाँद कुमहलाया हुआ निकला शबे आशूर को
किस क़दर ग़म का अन्धेरा था शबे आशूर को

हो रही थीं तेज़ तलवारें नबी (स0) की आल पर
लरज़ा बर अन्दाम थी दुनिया शबे आशूर को

ज़िन्दगी की गोद में वो इज़्तेराबे कायनात
बन गई बे शीर का झूला शबे आशूर को

आह निकली सीन–ए–गेती से पहुँची ता फलक
तोड़ कर फितरत का सन्नाटा शबे आशूर को

कर्बला के दश्त में बेख़्वाब था जाने हिजाज़
सो रहे थे यसरिबो बतहा शबे आशूर को

मुत्तहिद था शुक्रे हक़ में सुब्ह करने के लिए
क़ाफ़िला दो रोज़ का प्यासा शबे आशूर को

थे तबस्सुम रेज़ अन्सारे हुसैन (अ0) इब्ने अली (अ0)
ज़िन्दगी दिलचस्प थी गोया शबे आशूर को

अल्ला अल्ला चाहते हैं तुझको अन्सारे हुसैन
ज़िन्दगी ने मौत से पूछा शबे आशूर को

ऐसे बेपरवा कि जैसे सर ही शानों पर नही
जंग पर जब फैसला ठहरा शबे आशूर को

कुछ सादाएँ आ रही थीं खेमा–ए–शब्बीर से
दर्द का तूफान था दरिया शबे आशूर को

शम्आ लेकर रुए अक्बर देखने बैठी थी माँ
सुब्हे महशर तक ठहरना था शबे आशूर को

जाने क्यों कर रह गए पर्दे में असरारे अज़ल
नंगे सर थीं फातिमा ज़हरा शबे आशूर को

नजमे गरदूँ सर बसिजदा है सितारे बे ज़बाँ
किस से पूछें तुम ने क्या देखा शबे आशूर को